ISSN 2395-051X

स्वाधीन भारत में नेताजी की प्रासंगिकता

डॉ. नरेन्द्र सिंह

प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

शास.पी.जी.कन्या स्वशासी उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म. प्र.)

सारांश -

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक नवीन परम्परा भारतीय स्वाधीनता सेनानियों की सैनिक परम्परा को जोड़ दिया गया। आजाद हिन्द की अन्तरिम सरकार ने दो शतक तक ताबेदारी का जीवन व्यतीत करने वाली भारतीय जनता को प्रथम बार स्वतंत्र राज्यतंत्र की अनुभूति दी। एक मानव और विचारक होने के नाते भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में एक सक्रिय राजनेता से अलग, नेताजी सुभाषचन्द्र मानव क्रिया-कलापों में एक नवीन तत्व-ज्ञान और नैतिक भावना की खोज कर रहे थे। सामयिक इतिहास के वे एक विलक्षण व्यक्ति थे जो अपने देश में एक नीवन सामाजिक पद्धति के विकास करने के लिये भारत के उन्नत आध्यात्मिक कोष और आधुनिक औद्योगिकी के बीच सामजस्य स्थापित करने की खोज कर रहे थे।

मुख्य शब्द - स्वाधीनता संग्राम, सैनिक पंरपरा, पुनर्जागरण

सुभाषचन्द्र बोस का जन्म सन् 1897 में हुआ था। ब्रिटिश साम्राज्य सम्पूर्ण विश्व में अपना प्रभुत्व बनाए हुए था। उसका साम्राज्य इतना विस्तृत था कि दिन-रात दोनों उसकी धरती पर मौजूद रहते थे। विक्टोरिया पिछले 50 वर्षो से राज कर रही थीं। सन् 1885 में कांग्रेस का जन्म हो चुका था, बंगाल में पुनर्जागरण आरंभ हो चुका था । सन् 1905 तक कांग्रेस का कायाकल्प हो चुका था, वह नरम दल और गरम दल में बंट चकी थी और तिलक 'स्वराज्य' की बात करने लगे थे।

मात्र 14 वर्ष की उम्र में 'सुभाष' एक परिपक्व व स्पष्ट विचारक के रूप में उभरते हैं। इतनी कम उम्र में वे अपने 'राष्ट्रधर्म' की अभिव्यक्ति कर देते हैं। वे स्कूल से अपनी माँ को पत्र लिखते हुए कहते हैं ''भारत ईश्वर की प्रिय भूमि है। इस महान भूमि में प्रत्येक युग में लोगों के प्रबोधन के लिए, पृथ्वी को पाप-मुक्त करने के लिए और सदाचार की स्थापना करने के लिए एक उद्धारक के रूप में उनका जन्म होता रहा है। हमने अपना धर्म गवाँ दिया है और अपना सर्वस्व खो दिया है, यहाँ तक कि राष्ट्रीय जीवन भी । हम कितने कमजोर हैं, नीच है अधर्मी और शपित राष्ट्र । माँ, मुझे आश्चर्य है कि इस युग में भारत मां का शायद ही कोई स्वार्थ रहित पुत्र है । वे आर्य वीर कहाँ है ? जो भारत माँ की सेवा में अपने बहुमूल्य जीवन का स्वेच्छा से बलिदान करते थे ?तुम एक माँ हो, लेकिन क्या तुम मात्र हमारी माँ हो ? नहीं तुम सभी भारतवासियों की माँ हो।''

भारतीय संस्कृति, धर्म, राष्ट्रीय जीवन, सदाचार और त्याग को लेकर बालक सुभाष बिलकल स्पष्ट थे- ध्यान रहे इस समय राष्ट्रीय राजनीति में 'गांधी' कहीं नहीं थे? प्रश्न उठता उठता है कि वे 'किस उद्धारक' की बात कर रहे हैं। इसका उत्तर मिलता है, 1913 मं अपने भाई शरत चन्द्र को लिखे पत्र में । वे लिखते हैं ''हम लोगों के मध्य आशा का देवदूत हमारी आत्मा को प्रज्ज्वलित करने और हमारे सुस्ती और आलसीपन को झकझोरने के लिए प्रत्यक्ष हुआ, वह संत विवेकानंद है।''

सुभाष के अंदर मानवतावाद, परिव्राजक और समाज सुधारक के गुणों का विकास विवेकानंद की प्रेरणा से हुआ । आज विवेकानंद का जो इस्तेमाल हो रहा है, जो सिलेक्टिव चीजें प्रचारित की जाती हैं, वे विवेकानंद की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत नहीं करती । शिकागो में धर्म-ध्वजा फहराने के बाद जब वे भारत वापिस आए थे तो यहाँ के सामाजिक जीवन में घूमने का प्रत्यक्ष अनुभव करने के बाद उनका समाज-सुधारक का रूप विकसित हुआ, उन्होंने गरीबी, अशिक्षा और जातिप्रथा के अभिशाप के विरूद्ध काम किया, विवेकानंद के इस कार्य को आगे लाने की जरूरत है। विवेकानंद से प्रेरणा लेकर ही सुभाष ने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का अनुभव किया और अपने विचारों को परिपक्वता प्रदान की । यहीं से उनके व्यक्तित्व में जो निखार आया उससे उन्होंने अंग्रेजों की दासता और राष्ट्रीय स्वाधीनता के भावों को परिपक्व किया।

सुभाष अत्यंत मेधावी एवं प्रखर विद्यार्थी थे । अपने बड़े भाई शरत चन्द्र की मदद से उन्होनें भारतीय सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी की और उसमें सफलता भी पाई । यहाँ सुभाष के पास एक उच्च अधिकारी के पद पर जीवन भर सुख भोगने का अवसर था। किन्तु इस परीक्षा में उनके बैठने का उद्देश्य अंग्रेज शासन की सेवा करने का नहीं था, उनका एकमात्र उद्देश्य अपनी योग्यता और प्रतिभा का प्रदर्शन करना था। तभी तो उन्होंने भारतीय सिविल सेवा में चयन के उपरान्त अपने भाई शरत चन्द्र को पत्र लिखा, ''हम लोगों ने एक ओर स्वामी विवेकानंद और दूसरी ओर अरविन्द घोष के प्रभाव में पल्लवित और विकसित होकर ऐसी मानसिकता पायी है जो समझौता स्वीकार नहीं करती है, ऐसी परिस्थिति में क्या हम विदेशी अधिकारी-तन्त्र के प्रति वफादार होकर एक खुराक शोरबा के लिए अपने आपको बेच दें।''

सुभाष के भाई शरतचन्द्र ने सुभाष के विदेश की पढ़ाई का खर्च वहन किया था, सुभाष को इसका अहसास था वे अपने भाई को पत्र में लिखते हैं कि ''आपको मेरे खर्च किए गये रूपये को मां के चरणों पर अर्पित दान देना समझना होगा और उनका किसी रूप में पुनः वापस होने की आशा छोड़नी होगी।'' इस प्रकार 24 वर्ष की उम्र में सुभाष ने अपना मार्ग चुन लिया उन्होंने विदेशी शासन की नौकरी का त्याग किया, बलिदानी जीवन चुना और राष्ट्र के कल्याण के लिए वैभव-विलास के पद का त्याग कर कष्टों से भरी निर्धनता के जीवन का स्वागत किया । उन्होंने स्वतंत्रता के लिए अपने आप को राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए समर्पित कर दिया । कैम्ब्रिज से उन्होंने देशबंधु चितरंजन दास को कई पत्र लिखे, राष्ट्रीय आंदोलन को लेकर अपने विचार व्यक्त किए । उन्होंने देशबंधु को अपना राजनैतिक गुरू स्वीकार किया और उनको लिखा ''मैं अब तैयार हूँ -आपको

मुझे कर्म में क्रियाशील होने के लिए निर्देश देना है।''

सन् 1921 तक गांधी कांग्रेस के एवं देश के स्वाधीनता आंदोलन के बड़े नेता बन चुके थे । परिदृश्य से तिलक की अनुपस्थिति ने गांधी को विकल्प हीन बना दिया । परंतु देश भर में ऐसे नेता सक्रिय थे जो उस समय तक गांधी से ज्यादा अनुभवी एवं वरिष्ठ थे, पर उन सबकी एक ही कमी थी उनकी क्षेत्रीयता, कोई बंगाल का बड़ा नेता था, कोई महाराष्ट्र का, कोई पंजाब का, कोई किसी अन्य क्षेत्र का, क्षेत्रीय स्तर पर इनका योगदान निस्संदेह गांधी से ज्यादा था, पर राष्ट्रीय राजनीति का शून्य भरने का काम गांधी को ही करना था। बंगाल में देशबंधु चितरंजन दास ऐसे ही नेता थे । सुभाष लिखते हैं कि ''राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए देशबंधु चितरंजनदास एक उच्च पादरी के रूप में अवतरित हो चुके थे।'' सुभाष ने देशबन्धु को अपना पथ-प्रदर्शक चुन लिया । वे लिखते हैं - यदि कोई राष्ट्रीय जीवन के साथ अपने जीवन का तादात्म्य स्थापित करने में असफल रहे तो वह देशभक्ति को नहीं समझ सकता।

राष्ट्र के साथ अपने जीवन का तादात्म्य स्थापित करने के फलस्वरूप यदि किसी व्यक्ति में देशभक्ति उठती है तो वही अपनी नवीन पहचान प्राप्त कर सकता है और एक राष्ट्र का निर्माण कर सकता है । सभी साधनाओं का मूल सत्य विचार में डूब जाना है, उसी विचार से जीवन, मरण, नींद, मृत्यु में उसे संचालित होना है- वे जो राष्ट्र निर्माता बनना चाहते हैं निश्चित रूप से इस साधना में सफल होकर सिद्ध बनें।

गांधी की तरह सुभाष के लिए भी आजादी का अर्थ सिर्फ अंग्रेजों की दासता से आजादी नहीं था वरन् उनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। वे एक नवीन भारत का निर्माण करना चाहते थे, उनकी आजादी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से संबंधित थी, उनकी आजादी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक आजादी थी । वे त्याग और बलिदान की बात करते थे । अपने गुरू देशबंधु के द्वारा जब 'स्वराज पार्टी' की स्थापना की गई तो वे उसके संचालन में जुट गये । सुभाष गांधी के आवाहन पर सार्वजनिक जीवन में आए थे, किन्तु नेता वे देशबंधु को ही मानते रहे । 'नेहरू' में उन्हें प्रगतिशील नेता की छवि दिखती थी, उन्होंने हमेशा 'नेहरू' के साथ काम करना बेहतर माना।

सुभाष कई बार गांधी की नीतियों से असहमत नजर आए, अनेक बार उन्होनें गांधी से अलग मत व्यक्त किया। किन्तु गांधी के प्रति उनके मन में जो भाव थे वे बहुत ऊँचे दर्जे के थे, उन्होंने गांधी को अपने समकालीन राजनीतिक परिदृश्य में सर्वोच्च स्थान दिया । वे कहते हैं ''ऐसा मालूम पड़ता है कि उन्हें ईश्वर ने स्वतंत्रता की राह दिखाने भेजा था, भारत की रक्षा हुई । अन्तिम विजय पुनः एक बार आश्वासित हुई।'' सुभाष गांधी के अहिंसक आंदोलन से कई बार असहमत दिखे पंरतु उसके महत्व को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं कि ''यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि सन् 1920 में अगर वे नये आयुध के साथ अवतरित नहीं हुए होते तो भारत आज भी अवसन्न रहता। भारत की आजादी के लिए उनकी सेवाएं विलक्षण और अद्वितीय हैं। कोई भी अपने एक जीवनकाल में इस प्रकार की परिस्थितियों में, इससे अधिक उपलब्ध नहीं करा सकता। ''

सुभाष कई बार गांधी के विरोध में खड़े नजर आते हैं परन्तु वास्तव में यह गांधी का विरोध नहीं था बल्कि ऐसा एक 'स्वतंत्र सोच' के कारण दिखाई देता है। राष्ट्रीय आंदोलन में कांग्रेसियों के बीच गांधी का स्थान 'महात्मा' और 'राष्ट्रपिता' जैसा बन गया था अतः कोई भी कांग्रेसी उनके सामने खड़ा नहीं दिखता था। सुभाष का अपना चिंतन था, अपनी विचारधारा थी और अपना व्यक्तित्व था। गांधी को 'राष्ट्रपिता' का संबोधन पहली बार उन्हीं का दिया हुआ है। सन् 1929 में लाहौर कांग्रेस में वे गांधी के प्रस्ताव में संशोधन प्रस्तुत करते हैं वे कांग्रेस का लक्ष्य 'स्वराज्य' घोषित करते है, जिसका अर्थ है पूर्ण आजादी । सुभाष एक सम्पूर्ण विजन लेकर चलते हैं वे भारतीयों में नयी मानसिकता और नवीन चेतना जगाने का कार्य करते हैं। 1931 के अखिल भारतीय नौजवान अधिवेशन में वे अपने सामाजिक आर्थिक विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं-'' मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि न्याय, समानता, स्वतंत्रता, अनुशासन एवं प्रेम हमारे सामूहिक जीवन का मूलभूत सैद्धान्तिक आधार होना चाहिए, यह सिद्धान्त समाजवाद का मूल है जैसा मैं इसे समझता हूँ और मैं भारत में समाजवाद देखना चाहूँगा।'' सुभाष उन देशों के सम्पर्क में रहे थे जहाँ समाजवादी शासन व्यवस्थायें लागू हो चुकी थीं और वे उस व्यवस्था की खामियों से भी परिचित हो रहे थे इस लिए जब वे समाजवाद की बात करते हैं तो उनके सामने कोई विदेशी माडल नहीं होता बल्कि वे 'भारतीय समाजवाद' की बात करते हैं वे कहते हैं ''मेरी धारणा है कि भविष्य में जो हमारे सामने हैं, भारत एक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक रूपरेखा विकसित करेगा जो अनेक प्रकार से संसार के सामने एक सीख की वस्तु होगी, भारतीय परिस्थितियों में भारत में जब समाजवाद लागू किया जायेगा तो समाजवाद का एक नवीन रूप विकसित होगा जिसे हम भारतीय समाजवाद के रूप में स्वागत करेंगे । मैं भारत में समाजवादी गणतन्त्र चाहता हूँ, मुझे जो संदेश देना है वह है सम्पूर्ण और सभी प्रकार से विशुद्ध आजादी-हम पूरी तरह से आर्थिक मुक्ति चाहते हैं, सभी के लिए समान अवसर हो, हम पूर्ण समानता चाहते हैं । स्त्री-पुरूष, गरीब, निम्न श्रेणी, सभी के लिए।

1938 में हरिपुरा अधिवेशन में सुभाषचन्द्र बोस अपने लक्ष्यों की घोषणा करते हैं- भारतीय राष्ट्रवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद परस्पर विरोधी हैं, उनके बीच समझौता नहीं हो सकता, भारत क्रान्ति के लिए तैयार है और पूर्ण आजादी के लिए अन्तिम संघर्ष का समय आ गया है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अपने सभी अंगों किसान, युवा, छात्र, देशभक्त, पृथकतावादी, साम्प्रदायिक सभी को प्रतिद्वन्दी भावना समाप्त कर साम्राज्यवादियों के विरूद्ध लड़ना चाहिए।

नेताजी के जीवन से जो सबसे बड़ी शिक्षा ली जा सकती है वह है, उनकी अपने अनुयायियों में ऐक्य-भावना की प्रेरणाविधि, जिससे कि वे सब साम्प्रदायिक तथा प्रान्तीय बंधनों से मुक्त रह सकें और एक समान उद्देश्य के लिए अपना रक्त बहा सकें। उनकी अनुपम सफलता उन्हें निस्संदेह इतिहास के पन्नों में अमर रखेगी ।

नेताजी के प्रत्येक अनुगामी ने, जो भारत लौटने पर निर्विवाद रूप से यह कहा कि नेताजी का प्रभाव उन पर जादू-सा करता था और वह उनके अधीन एकमात्र भारत की आजादी प्राप्त करने के उद्देश्य से काम

करते थे। उनके दिलों में सांप्रदायिक और प्रांतीय या और कोई भी भेदभाव कभी अंकुरत नहीं हुआ था।

नेताजी एक महान् गुणवान पुरूष थे। वह व्युत्पन्नमति और प्रतिभा-सम्पन्न थे । उन्होंने आई.सी. एस. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी, किन्तु नौकरी उन्होंने नहीं की । भारत लौटने पर वह देशबन्धु दास से प्रभावित हुए और कलकत्ता कार्पोरेशन के मुख्य एक्जीक्यूटिव आफीसर नियुक्त हुए । बाद में वे राष्ट्रीय महासभा के भी दो बार राष्ट्रपति बने, परन्तु उनकी उल्लेखनीय सफलताओं में, भारत से बाहर के, उस समय के कार्य हैं, जब वह देश से भागे और काबुल, इटली, जर्मनी और अन्य देशों से होकर अंत में जापान पहुंचे । गांधी लिखते हैं कि विदेशी चाहे कुछ भी कहें, पर मैं विश्वास के साथ यह अवश्य कहूंगा कि आज भारत में एक भी ऐसा आदमी नहीं है जो उनके इस प्रकार भागने को अपराध मानता है। ''समरथ को नहीं दोष गुसाई''- सन्त तुलसीदास के इस कथन के अनुसार नेताजी पर भागने का दोष नहीं लगाया जा सकता। जब सर्वप्रथम उन्होंने सेना तैयार की तो उसकी तुच्छ संख्या की उन्होंने कोई चिन्ता नहीं की । उनका निश्चय था कि संख्या चाहे कितनी ही कम क्यों न हो, पर भारत को आजाद कराने के लिए उन्हें सामर्थ्य भर यत्न करना ही चाहिए।

आज सुभाषबाबू की जन्मतिथि है । मैंने कह दिया कि मैं तो किसी की जन्मतिथि या मृत्यु तिथि याद नहीं रखता । यह आदत मेरी नहीं है। सुभाषबाबू की तिथि की मुझे याद दिलाई गई। उससे मैं राजी हुआ। उसका भी एक खास कारण है। वह हिंसा के पुजारी थे । मैं अहिंसा का पुजारी हूँ पर इसमें क्या ? मेरे पास गुण की ही कीमत है । तुलसीदास जी ने कहा है नः

जड़चेतन गुन-दोषमय विश्व कीन्ह करतार ।

संत-हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि विकार ।।

हंस जैसे पानी को छोड़कर दूध ले लेता है, वैसे ही हमें भी करना चाहिए। मनुष्यमात्र में गुण और दोष दोनों भरे पड़े हैं। हमें गुणों को ग्रहण करना चाहिए। दोषों को भूल जाना चाहिए। सुभाषबाबू बड़े देशप्रेमी थे । उन्होंने देश के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी थी और वह करके भी बता दिया । वह सेनापति बने। उनकी फौज में हिन्दु, मुसलमान, सिख सब थे। सब बंगाली ही थे, ऐसा भी नहीं था। उनमें न प्रांतीयता थी न रंग-भेद, न जाति-भेद । वह सेनापति थे, इसलिए उन्हें ज्यादा सहूलियत लेना या देना चाहिए, ऐसा भी नहीं था।[1]

कांग्रेस समाजवादी दल 1936 से ही काम कर रहा था। क्योंकि भारत सरकार ने कम्युनिस्ट दल पर रोक लगा रखी थी फिर भी वह खुलकर मैदान में आ रहा था। इसके अलावा किसान दल भी था जिसकी एक शाखा कम्युनिस्टों की तरफ और दूसरी शाखा समाजवादियों की तरफ झुक रही थी । यह भेद संयुक्त प्रान्त व बिहार में अधिक और बंगाल में एक हद तक साफ होता जा रहा था। फिर श्री एम.एन. राय थे, जिनके रोग के निदान व उपचार के संबंध में अपने निराले विचार थे । आगामी दल में सुभाष बाबू के झंडे के नीचे वामपक्षी एक. हो रहे थे।[2]

अहिंसा चरखा, रचनात्मक कार्य आदि के प्रति अपनी सामान्य आस्था के साथ गांधी जी ने सत्याग्रह को एकमात्र हथियार बताया जिसके जरिए भारत की आजादी के लिए युद्ध किया जा सकता था। जिन लोगों को उनके विचारों और कार्यक्रम में विश्वास नहीं था, उनका जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि हर आदमी को अपने विचारों और कार्यक्रमों पर चलने की आजादी है लेकिन जब तक वह कांग्रेस को अपने विचारों से सहमत नहीं कर लेता तब तक कांग्रेस के नाम और मंच का उपयोग नहीं करना चाहिए । ''प्रत्येक कांग्रेस कमेटी को सत्याग्रह की एक इकाई बन जाना चाहिए।'' कुछ ही दिनों बाद एक वक्तव्य में गांधीजी ने कहा - '' प्रत्येक कांग्रेस कमेटी को सत्याग्रह कमेटी बन जाना चाहिए और ऐसे कांग्रेसजनों का पंजीकरण करना चाहिए जिन्हें साम्प्रदायिक सद्भावना, अस्पृश्यता निवारण और सूत कातने में तथा खद्दर में विश्वास और आस्था है।'' इस बयान में भावी सत्याग्रही भर्ती करने का निर्देश दिया गया था।

दूसरी ओर, सुभाष बोस ने एक जवाबी सम्मेलन का आयोजन किया जिसका नाम उन्होंने ''समझौता विरोधी सम्मेलन'' रखा, और स्वयं इसके अध्यक्ष बने। उनका आरोप था कि कांग्रेस गुप्त रूप से युद्ध-संचालन के मामले में सरकार के साथ समझौता करने की पेशकश कर रही है, और इसीलिए उसके इस समझौतावादी इरादे के विरूद्ध एक आन्दोलन चलाने की जरूरत थी । समझौता-विरोधी सम्मेलन का आयोजन भी बहुत भव्य रहा । जिस तरह कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर कांग्रेस अध्यक्ष का स्वागत शानदार ढंग से किया जाता था, उसी ठाठ-बाट से उक्त सम्मेलन के अध्यक्ष का भी स्वागत-आयोजन किया गया।[3] बीसवीं शती के चौथे दशक में यूरोप में नेताजी के बाध्यतामूलक प्रवास ने उन्हें एक नेता से एक राजनीतिज्ञ बना दिया, जिन्होंने संसार के नेताओं से समान स्तर पर सन्धि वार्ता की । सन् 1938 के हरिपुरा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए जब सुभाष चन्द्र बोस को बुलायागया, उस समय निश्चित रूप से उनमें राजनैतिक गंभीरता आ गई थी और वे अपने राजनीतिक विचार-धारा, कार्यक्रम एवं क्रिया की योजना से युक्त होकर तैयार थे । उनके राजनैतिक मंच के मुख्य तथ्य थे-

''प्रथम, भारतीय राष्ट्रवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद परस्पर विरोधी हैं और उनके बीच समझौता होना संभव नहींहै। भारत क्रानित के लिए तैयार है और पूर्ण आजादी के लिये अन्तिम संघर्ष का समय आ गया है।

द्वितीय, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अपने सभी अंगों-किसान, युवक, छात्र और भारतीय समाज के सभी देशभक्त तथ्यों को अपने सभी पृथकतावादी और साम्प्रदायिकता की भावना को समाप्त कर विस्तृत रूप से साम्राज्यवादियों के विरूद्ध कार्य करना चाहिए।

तृतीय, चूंकि राजनीतिक आजादी पास ही है, कांग्रेस द्वारा देश का वृहत पैमाने पर औद्योगीकरण के लिये राष्ट्रीय योजना और सम्पूर्ण आर्थिक तंत्र का समाजवादी तरीके पर पुनर्गठन के कार्यो को शुरू किया जाना चाहिए।

चतुर्थ, भारत जैसा असैनिक देश, जो आजादी के लिये संघर्षरत है, के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध संकट, जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य उलझा हो, आजादी के लिये प्रहार करना सुनहरा अवसर होगा। इसलिए हम लोग न केवल ब्रिटिश साम्राज्यवादी लड़ाई में भारतीयों के शोषण का सक्रिय रूप से विरोध करें बल्कि अपने राष्ट्रीय कल्याणार्थ उस संकट से पूरा लाभ उठायें।''[4]

उनमें और राष्ट्रीय नेताओं में राष्ट्रीय स्थिति के मूल्यांकन, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं की व्याख्या, हमारे सामाजिक-आर्थिक लक्ष्य और संघर्ष के तरीकों पर मतभेद हो गया।

रविन्द्रनाथ ठाकुर जो भारतीय समाज के वैज्ञानिक विकास में विश्वास करते थे, राष्ट्रीय राजनीति में इस सृजनात्मक विकास से इतने उत्साहित हुए कि उन्होंने महात्मा गांधी से प्रस्तावित किया कि दूसरी अवधि के लिय सुभाषचन्द्र बोस ही कांग्रेस का अध्यक्ष बनाये जायें। ठाकुर (टैगोर) का एक विचार था कि कांग्रेस में जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस दोनों ही ''आधुनिकता'' वादी हैं।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की प्रतिष्ठा अन्ततः न्यायसंगत प्रमाणित हुई। साम्राज्यवादियों द्वारा अगस्त क्रान्ति दबा दी गयी और भारत में स्वतंत्रता सेनानियों के बड़े अंश को समाप्त कर दिया गया। इस ऐतिहासिक क्षण में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भारतीय राष्ट्रीय सेना का नेतृत्व संभाला और राष्ट्रीय तिरंगा ध्वज लेकर ओठों पर ''दिल्ली की ओर'' नारा धारण कर युद्ध मैदान की ओर बढ़े। उन्होंने औपनिवेशिक आधिपत्य के मुख्य तंत्र ब्रिटिश भारतीय सेदा को नष्ट भ्रष्ट कर दक्षिण पूर्व एशिया की मुक्ति का पथ खोल दिया।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक नवीन परम्परा, भारतीय स्वाधीनता सेनानियों की सैनिक परम्परा को जोड़ दिया गया। आजाद हिन्द की अन्तरिम सरकार ने दो शतक तक ताबेदारी का जीवन व्यतीत करने वाली भारतीय जनता को प्रथम वार स्वतंत्र राज्यतंत्र की अनुभूति दी।

एक मानव और विचारक होने के नाते भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में एक सक्रिय राजनेता से अलग, नेताजी सुभाषचन्द्र मानव क्रिया-कलापों में एक नवीन तत्व-ज्ञान और नैतिक भावना की खोज कर रहे थे। सामयिक इतिहास के वे एक विलक्षण व्यक्ति थे जो अपने देश में एक नीवन सामाजिक पद्धति के विकास करने के लिये भारत के उन्नत आध्यात्मिक कोष और आधुनिक औद्योगिकी के वीच सांमजस्य स्थापित करने की खोज कर रहे थे।

संदर्भ -

1. कालेकर, काका, गांधी संस्मरण और विचार, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1968, पृ. 108
2. रमैया, पट्टाभिसीता, कांग्रेस का इतिहास, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1984, पृ. 139
3. स्वतंत्रता संग्राम के पच्चीस वर्ष-प्रकाशक सूचना प्रसारण मंत्रालय, 1990, पृ0 249,
4. तिवारी, कनक, इतिहास का भूकंप, प्रका. संस्कृति भवन भोपाल,1997, पृ. 84.